|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 8: अक्षरब्रह्मयोग

1/3 (श्लोक 1-8), शनिवार, 15 फ़रवरी 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/xI6mSFgz03I

अक्षरं ब्रह्म परमं

ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवम् गुरुदेव के आशीर्वाद से विवेचन सत्र का शुभारम्भ सङ्कीर्तन, भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवं दीप प्रज्वलन से हुआ। आज के चिन्तन का यह अध्याय एक गहन विषय पर आधारित है। गीता जी के चिन्तन में हम नतमस्तक हैं तथा यह गुरुदेव गोविन्ददेव गिरि जी एवं ज्ञानेश्वर महाराज जी की ही कृपादृष्टि है कि आज हम सभी यहाँ एकत्र हो, इस अद्भुत विषय को जानने हेतु प्रयासरत हैं।

माँ सरस्वती, महर्षि वेदव्यास, ज्ञानेश्वर महाराज, सद्गुरु गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के अथक प्रयास ही हैं, जिनके मार्गदर्शन में श्रीभगवान् द्वारा गाया श्रीमद्भगवद्गीता जी जैसा अनुपमेय गीत, जो अर्जुन के विवेक पर आच्छादित अज्ञान रूपी अन्धकार को समाप्त करने हेतु तथा उन्हें युद्ध हेतु प्रेरित करने हेतु युद्धभूमि में गीत सदृश्य गाया गया, उसका लाभ हमें भी प्राप्त हो रहा है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी के मुखारविन्द से कही गई कुछ ज्ञानमय पङ्क्तियाँ इस प्रकार हैं-

तैसा वाग्विलास विस्तारु। गीतार्थे विश्वभरु।
आनंदाचे आवारुं। मांडू जगा।।
फिटो विवेकाची वाणी। हो कानामनाची जिणी।
देखो आवडे तो खाणी। ब्रह्मविद्येची।।

ज्ञानेश्वर महाराज इन पङ्क्तियों के माध्यम से श्रीमद्भगवद्गीता जी की महिमा को उजागर करते हुए कहते हैं कि मैं अर्थात् श्रीभगवान् स्वयं की वाणी का विस्तार इस हेतु कर रहे हैं कि सम्पूर्ण विश्व श्रीमद्भगवद्गीता जी के रस से सराबोर हो, मानव अपने जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् भगवद् तत्त्व की प्राप्ति हेतु तत्पर हो सके, जिस हेतु उसने मनुष्य जन्म लिया है। उसे स्वयं की पहचान हो कि उस परमपिता परमात्मा, उस सच्चिदानन्द का ही वह एक सूक्ष्म अंश है। यह समझते हुए जीव आनन्द भाव से उस परम सिद्धि मार्ग पर गमन हेतु प्रशस्त हो।

यही कारण है कि ज्ञानेश्वर महाराज जी ने गीता जी के भावार्थ को अपने श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया ताकि इस माध्यम से मनुष्य मात्र उस परम अनुभूति को प्राप्त करने हेतु लालायित हो तथा उसके अन्त:करण में यह जानने की इच्छा उत्पन्न हो कि वह परम अनुभूति कैसे प्राप्त कर सकता है, जिस हेतु उसने यह मानव देह प्राप्त की है। इसी कारण ज्ञानेश्वर महाराज जी

श्रीमद्भगवद्गीता जी की महिमा का गुणगान करते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज जी की इस भावार्थ दीपिका को ज्ञानेश्वरी कहा गया।

आज के विवेचन सत्र में हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के एक महत्त्वपूर्ण किन्तु गम्भीर विषय का चिन्तन करेंगे। यह विषय समझने में थोड़ा कठिन है। कभी-कभी कुछ विषय या शब्द तथा उनके भावार्थ स्वतः ही हमारे अन्त:करण में प्रविष्ट हो जाते हैं, परन्तु कुछ ज्ञान के विषय समझना निश्चित ही बेहद कठिन होता है, ऐसा ही एक विषय श्रीभगवान् इस अध्याय में अपने मुखारविन्द से बता रहे हैं तथा यह अध्यात्म का विषय है। श्रीमद्भगवद्गीता वास्तव में भारतीय वैदिक शास्त्रों, मुख्यतः उपनिषदों का सार है।

अध्याय आठ में वर्णित ज्ञान अर्थात् सैद्धान्तिक ज्ञान (theoretical knowledge) तथा विज्ञान अर्थात् व्यावहारिक ज्ञान (practical knowledge) है।

ज्ञान अर्थात् अक्षर ब्रह्म का ज्ञान तथा विज्ञान अर्थात् उस ब्रह्म की अनुभूति। मात्र चालीस मिनिट में श्रीभगवान् द्वारा प्रतिपादित श्रीभगवान्-अर्जुन संवाद को महर्षि वेदव्यास जी ने सम्पादित कर मानव कल्याण हेतु हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। इन सात सौ श्लोकों की अविरल ज्ञानधारा में श्रीभगवान् कोई भी विषय अछूता नहीं रखना चाहते, अत: अर्जुन के समक्ष श्रीभगवान् ने अब जो विषय उठाया है, उसका श्रवण कर अर्जुन अचम्भित हो जाते हैं क्योंकि इससे पूर्व श्रीभगवान् जिन विषयों को वर्णित कर रहे थे वे समस्त विषय अर्जुन हेतु समझने में सरल थे। जैसे स्मार्ट स्टडी, स्मार्ट कार्ड, स्मार्ट फ़ोन आदि होते हैं, गुरुदेव कहते हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान् ने अर्जुन को यह स्मार्ट ज्ञान प्रदान किया।

उस अनछुए, गम्भीर विषय को संस्पर्शित करने हेतु श्रीभगवान ने अध्याय सात के अन्तिम दो श्लोकों में ऐसे विषय उद्‌घाटित किए, जिन्होंने अर्जुन को विचलित किया तथा उन्हें श्रीभगवान् से प्रश्न पूछने हेतु प्रेरित किया।

अध्याय सात उन्तीसवाँ श्लोक-

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्म कर्म चाखिलम् ॥

जरा (वृद्धावस्था) और मरण (मृत्यु) से मोक्ष पाने के लिये जो मेरा आश्रय लेकर प्रयत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को और सम्पूर्ण कर्म को भी जान जाते हैं।

तीसवाँ श्लोक इस प्रकार है-

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः|
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः।।

इसी प्रकार जो मनुष्य मुझ परमेश्वरको साधिभूताधिदैव अर्थात् अधिभूत और अधिदैवके सहित जानते हैं एवं साधियज्ञ अर्थात् अधियज्ञके सहित भी जानते हैं वे निरुद्धचित्त योगी लोग मरणकालमें भी मुझे यथावत् जानते हैं।

जब इस प्रकार कोई जीव पूर्ण रूप से परमात्मा को जान लेता है। जब जीव का भगवद् तत्त्व के साथ पूर्ण एकाकार हो जाता है। किसी को यह ज्ञान कब होता है? जिस क्षण जीव का परमात्मा से मिलन हो जाता है। तब जीव की वह अवस्था भक्तिमय अवस्था कहलाती है।

इस अध्याय में तथा पिछले अध्याय के अन्तिम दो श्लोकों में श्रीभगवान् द्वारा वर्णित अत्यन्त गूढ़ विषय ने जब अर्जुन को मोहग्रस्त कर दिया तब अपनी समस्त समस्याओं के निवारणार्थ उन्होंने श्रीभगवान् से प्रश्न पूछना प्रारम्भ कर दिया। श्रीभगवान् के इन गम्भीर वचनों ने अर्जुन को आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हेतु अधिक प्रवृत्त कर दिया। चूँकि वे अज्ञानी नहीं थे परन्तु एक सच्चे विद्यार्थी होने के नाते, वे श्रीभगवान् से अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर उसे आत्मसात् कर लेना चाहते थे।

अर्जुन कहते हैं-

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥

अर्जुन के श्रेष्ठतम शिष्य होने के साक्ष्य तब भी मिलते हैं जब वे अपने आचार्य गुरु द्रोण से धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अर्जुन एक परिपूर्ण शिष्य हैं। वे सदैव सम्पूर्णता से सीखना चाहते हैं। तब जब श्रीभगवान् ने अनेक शब्दों का प्रयोग किया। जैसे ब्रह्म, अधिभूत, अधियज्ञ, अध्यात्म आदि । अर्जुन के मुख पर प्रश्न चिन्ह आ गए तथा उनकी श्रीभगवान् से इन शब्दों को समझने की, उन्हें आत्मसात् करने की उत्कण्ठ इच्छा हुई।

श्रीमद्भगवद्गीता जी श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन के समक्ष किया गया कोई प्रवचन नहीं है। यह श्रीकृष्णार्जुन संवाद है, अर्थात् यहाँ दोनों महानविभूतियों के मध्य प्रश्न-उत्तर सहित वार्तालाप प्रगति पर है। श्रीमद्भगवद्गीता जी मन्दिरों, कन्दराओं या नदियों के तट पर किया गया प्रवचन न होकर युद्ध भूमि में अर्जुन को आत्मज्ञान प्रदान करने के उद्देश्य से श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन के साथ किया गया संवाद है, जिसमें अर्जुन द्वारा प्रश्न पूछना अनिवार्य है।

इस अध्याय में अर्जुन द्वारा कुल सात प्रश्न श्रीभगवान् से पूछे गए हैं, जो इस प्रकार हैं—

8.1, 8.2

अर्जुन उवाच
किं(न्) तद्ब्रह्म किमध्यात्मं(ङ्), किं(ङ्) कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं(ञ्) च किं(म्) प्रोक्तम्, अधिदैवं(ङ्) किमुच्यते ॥8.1॥
अधियज्ञः(ख्) कथं (ङ्) कोऽत्र, देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं (ञ्), ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ 8.2॥

अर्जुन बोले -हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? आध्यात्म क्या है? कर्म क्या है ? अधिभूत किसको कहा गया है और अधिदैव किसको कहा जाता है?
यहाँ अधियज्ञ कौन है और (वह) इस देह में कैसे है? हे मधुसूदन! वशीभूत अंतःकरण वाले मनुष्यों के द्वारा, अन्त काल में (आप) कैसे जानने में आते हैं?

विवेचन- आज गुरुदेव के आशीर्वाद से तथा उनके मार्गदर्शन से हम इतने सक्षम हो सके हैं कि इस गम्भीर अध्याय का रहस्योद्‌घाटन कर सकें। अर्जुन ने श्रीभगवान् से सात प्रश्न पूछे।

ब्रह्म क्या है?
अध्यात्म क्या है?
कर्म क्या है?
अधिभूत क्या है?
अधिदैव किसे कहते हैं?
अधियज्ञ कौन है?
युक्तचित्त वाले पुरुषों द्वारा अन्त समय में आप में किस प्रकार जानने में आते हैं?

यज्ञ का स्वामी कौन है तथा वह जीव देह में कैसे रहता है? मृत्यु के समय भक्ति में लगे रहने वाले आपको कैसे जान पाते हैं? कृपा करके यह सब बताइये।

जिस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने वाले बालक के मन में किसी विषय को जानने की उत्सुकता होने के कारण वे अपने शिक्षक से प्रश्न करते हैं, उसी प्रकार अर्जुन भी ज्ञानमार्ग पर चलने वाले प्रारम्भिक विद्यार्थी सदृश्य प्रतीत होते हुए श्रीभगवान् रूपी अपने शिक्षक से यहाँ प्रश्न पूछ रहे हैं।

अर्जुन के प्रश्न पूछने के कारण ही इस आठवें अध्याय का प्रारम्भ हुआ। अन्यथा श्रीभगवान् पुनः नवम् अध्याय से ज्ञान-विज्ञान योग का विस्तारित विवरण प्रारम्भ करते हैं।

इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है-

श्री भगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।

जो अध्याय सात के ज्ञान-विज्ञान विषय का ही विस्तार है।

अर्जुन इस अध्याय में श्रीभगवान् से प्रश्न करते हैं-

1)मृत्यु के समय भक्ति में लगे रहने वाले आपको कैसे जान पाते हैं?
2)योग साधक आपको किस प्रकार से जानता है?
3)मनुष्य वह धारणा कैसे प्राप्त करे?
4)जब जीव का अन्तिम समय आए तो जीव का चित्त उस परमात्मा के साथ निरन्तर एकाकार है, वह किस प्रकार से आपसे सम्बद्ध है, वह मैं जानना चाहता हूँ?

श्रीभगवान् जी द्वारा वर्णित वे समस्त शब्द जो अर्जुन के मन में उद्विग्नता उत्पन्न करते हैं, वे समस्त वेदान्त में परिभाषित संज्ञाएँ हैं। जिस प्रकार से कोई व्यक्ति कम्प्यूटर सीखने हेतु जायेगा तब उसे सरल तथा कठिन शब्दों का प्रयोग करना होता है तथा माऊस से कैसे काम किया जाता है, लैपटॉप कैसे कार्य करता है, सर्वर, डेस्कटॉप, जीबी, केबी आदि अनेक शब्द एवं कार्य सीखने होते हैं। कभी-कभी वह व्यक्ति उनमें से सरल शब्दों को तो समझ लेता है परन्तु कठिन शब्दों को समझना उसके लिए सहज नहीं होता। बालकों हेतु तो कम्प्यूटर सीखना सरल होता है क्योंकि वे अपनी प्रारम्भिक कक्षाओं से उसे चला रहे होते हैं। वृद्ध जनों हेतु यह उपकरण सीखना इतना सुगम प्रतीत नहीं होता, परन्तु कम्प्यूटर को सीखते हुए उसकी सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना आवश्यक होता है।

उसी प्रकार वेद आदि का अध्ययन करते हुए यदा-कदा कठिन शब्द आ जाने के कारण सम्भवतः उस विषय को समझने में कुछ कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाये, परन्तु जिस शास्त्र का हम अध्ययन कर रहे हैं उसका चिन्तन-मनन करने में आये किसी भी कठिन विषय को अछूता नहीं रहने देना ही उचित होगा।

श्रीमद्भगवद्गीता जी औषधियों के एक कोषागार के सदृश्य है, जहाँ भिन्न-भिन्न रोगों हेतु पृथक-पृथक औषधियाँ मिलती हैं। यह समस्त औषधियाँ समस्त रोगियों हेतु एक ही समय में उपयोगी नहीं होती। उसी प्रकार यह सारा वैदिक ज्ञान जो एक सार रूप में श्रीभगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता जी रूपी धागे में पिरोया है, उस समस्त ज्ञान की उपयोगिता, तत्क्षण जीव को कदापि नहीं होती, परन्तु जैसे-जैसे हम इस दिव्य ज्ञान के महासागर की गहराइयों में उतरते जाते हैं, उसकी उपयोगिता सिद्ध होती चली जाती है। अत: हम श्रीभगवान् द्वारा प्रदत्त श्रीमद्भगवद्गीता जी रूपी इस अलौकिक ज्ञान का श्रवण करें, उसे आत्मसात करने हेतु प्रयासरत रहें तथा शनैः-शनैः उस आध्यात्मिक ज्ञान की अनुभूति को स्वयं में समाहित करते हुए उसकी गहराइयों में उतरते जाएँ। इस विलक्षण दिव्य अनुभूति की प्राप्ति गुरुदेव की कृपा से ही सम्भव है।

श्रीभगवान् अपने प्रिय शिष्य अर्जुन द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर बेहद आनन्दित हो उठे। अर्जुन द्वारा पूछे गए ये प्रश्न युद्धभूमि में श्रीभगवान् के कथनों के प्रति अर्जुन की एकाग्रता को प्रदर्शित करते हैं।

listening is an art.

अत: जितनी एकाग्रता सहित हम गुरुदेव जी के प्रवचनों का श्रवण करेंगे, उतना ही उनके मुखारविन्द से उत्पन्न ज्ञान के उस प्रवाह में अधिकतम गहराइयों तक उतरते जायेगें।

जब कोई भी प्रश्न गुरुदेव जी से पूछा जाता है तब वे अपने उस शिष्य को लेकर बेहद प्रसन्न हो जाते हैं। यदि अर्जुन उस गूढ़ ज्ञान के विषय को प्रश्न रूप में श्रीभगवान् से नहीं पूछते तब श्रीभगवान् यह मानते हुए कि अर्जुन के मन में तनिक भी संशय विद्यमान नहीं है, अध्याय नवम् आरम्भ कर देते।

8.3

श्रीभगवानुवाच
अक्षरं(म्) ब्रह्म परमं(म्), स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो, विसर्गः(ख्) कर्मसञ्ज्ञितः ॥ 8.3॥

श्रीभगवान बोले- परम अक्षर ब्रह्म है (और) परा प्रकृति (जीव) को अध्यात्म कहते हैं, प्राणियों की सत्ता को प्रकट करने वाला त्याग कर्म कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान ने कहा- अविनाशी तथा दिव्य जीव ब्रह्म कहलाता है। ब्रह्म क्या है? हम समान्यतया ब्रह्म, ब्रह्माण्ड शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस ब्रह्माण्ड को गतिमान करने हेतु एक शक्ति है। ब्रह्माण्ड में अनेकों ग्रह हैं, हमारी आकाशगङ्गा के समस्त ग्रह अपनी कक्षा के सहित, सूर्यदेव की परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी भी हमें स्थिर अनुभव होती है परन्तु वह भी अपनी कक्षा में घूमते हुए सूर्यदेव की परिक्रमा करती है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि यह जो शक्ति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि चलायमान है, वही जीव में चेतन रूप में विद्यमान है। वही चैतन्य है। कभी-कभी इसे हम विद्‌युत (Electricity) की उपमा देते हैं परन्तु दोनों में अन्तर स्पष्ट है। विद्‌युत ज्ञान से रहित ऊर्जा है तथा चैतन्य में स्थित ऊर्जा ज्ञान से युक्त है, ज्ञानमयी है एवं यह चैतन्य ब्रह्म का ही अंश है।

श्रीभगवान् ब्रह्म को विस्तारित रूप से बतलाते हैं।
ब्रह्म शब्द ब्रह् धातु से निर्मित हुआ है। जिसका अर्थ होता है व्यापक, विशाल।

श्रीभगवान् द्वारा उच्चारित दो शब्द जिसमें-

- **पहला- अक्षर (जिसका कभी भी क्षरण नहीं होता)**
- **दूसरा- परम (जो सर्वोपरि है)**

गुरुदेव जी कहते हैं कि हमारे वैदिक शास्त्र में भी ब्रह्म शब्द अनेक स्थानों पर आया है परन्तु उसे वहाँ सर्वोपरि संज्ञा नहीं दी गई। अर्जुन यहाँ जिस ब्रह्म के विषय में पूछ रहे हैं वह सर्वोपरि है।

ज्ञानेश्वर महाराज भी ब्रह्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-
जे सर्वदा सर्वगत। जन्म क्षयातीत।
जयाचा केलीया घात। कदाही नोहे।।

जो सर्वदा, सर्वगत, सर्वज्ञ है। जिसका न तो जन्म ही सम्भव है न ही जिसका विनाश ही होता है, उसे ब्रह्म कहा गया। जो सृष्टि के कण-कण में विद्यमान है। जिस शक्ति को श्रीभगवान् ब्रह्म कहते हैं। उस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना ही ब्रह्मविद्या कहलाती है। ब्रह्मज्ञान को अनुभूत करना ही इस मानव जीवन का परम लक्ष्य है।

यह मनुष्य जन्म ही है जिसमें इस ब्रह्मविद्या को जान कर, उसे आत्मसात कर, जीवन के परम सुख, सच्चिदानन्द परमपिता परमेश्वर से स्वयं के सम्बन्धों को समझा जा सकता है एवं उस परमतत्त्व को अनुभव किया जा सकता है। इस सृष्टि में स्थित इस परम ज्ञान की प्राप्ति केवल मानव योनि में ही इस कारण सम्भव है क्योंकि ईश्वर द्वारा मानव को बुद्धि, विवेक प्रदान किया गया है। जिसके द्वारा मनुष्य सरलता से अपने जीवन उद्देश्य को जान पाता है तथा ब्रह्म अनुभूति ही परम साध्य है, यह समझ पता है।

यह बड़ी विडम्बना है कि जिस मनुष्य को ब्रह्म अनुभूति होती है, वह इसे जगत् के समक्ष उद्घाटित नहीं कर सकता। अन्यथा उसका वह ज्ञान विलुप्त हो जाता है। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के मध्य ऐसा ही एक संवाद रामकृष्ण वचनामृत में प्राप्त होता है, जहाँ विद्यासागर जी ठाकुर रामकृष्ण परमहंस जी से प्रश्न करते हैं कि ब्रह्म क्या है? क्या यह सत्य है? तब ठाकुर जी उत्तर देते हैं कि ब्रह्म परम सत्य है परन्तु इसको अनुभूत करने वाला जीव, प्राप्त ब्रह्म ज्ञान को किसी के समक्ष प्रकट नहीं कर सकता।

अध्याय तेरह में श्रीभगवान् इस विषय में बताते हुए कहते हैं कि ब्रह्म ज्ञानी को किसी भी प्रकार का अहङ्कार नहीं होना चाहिए।

अध्यात्म क्या है? इस शब्द का कई बार प्रयोग किया है हम सभी ने। वेदों का पाठ, अध्ययन, शास्त्रार्थ, प्रवचन करना यही अध्यात्म है, ऐसा हम समझते हैं, परन्तु इसके परे जीव द्वारा स्वयं को जानना ही अध्यात्म है। यह श्रीभगवान् स्वयं, अर्जुन को अध्यात्म को सरलतम रूप से बताते हैं।

किसी का स्वभाव चिड़-चिड़ा होना या किसी को क्रोध अधिक आना आदि अन्य दैहिक प्रतिक्रियाएँ, हमारी देह बुद्धि का ही परिणाम हैं। दैहिक बुद्धि से मनुष्य के भीतर विद्यमान चैतन्य प्रभावित होता है तथा कलुषित सांसारिक विचार उस चैतन्य (जो की ब्रह्म का ही अंश रूप है) को पूर्णत: आच्छादित कर देता है। परमात्मा की प्राप्ति हेतु अन्त:करण की शुद्धि एवं पवित्र विचारों की उपस्थिति आवश्यक है, परन्तु देहात्म बुद्धि के कारण जीव अपने मूल स्वरूप को नहीं पहचान पाता।

ब्रह्म का अंश, जो जीव के देह में उपस्थित चैतन्य है, जिसका स्वरूप ब्रह्म सदृश्य ही है। गुरुदेव कहते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की शक्ति सीमित रूप में किसी जीव की देह में प्रविष्ट होती है अत: हमारे देह में उपस्थित चैतन्य ही उस परम शक्ति का सूक्ष्म रूप है।

जिस प्रकार अविचल प्रवाहित होने वाली पवित्र गङ्गा मैया के जल को किसी लोटे में भर लेने से, उस विशाल जल की धारा से अंशमात्र जल, अपनी कम मात्रा में होते हुए भी वही गुणधर्म प्रकट करता है, जो गुणधर्म गङ्गा मैया के अथाह जल द्वारा प्रकट किया जाता है। उसी प्रकार जब अक्षर ब्रह्म सीमित हो, किसी जीव देह में प्रविष्ट होता है तब वह शक्ति देह की चेतना के रूप में बँध जाती है, जिसे अध्यात्म कहते हैं, अर्थात् अध्यात्म शब्द का अर्थ है जीवात्मा।

उसका नित्य स्वभाव अध्यात्म या आत्मा कहलाता है। जीवों के भौतिक शरीर से सम्बन्धित गतिविधि कर्म या सकाम कर्म कहलाती है अर्थात् जीव सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक जो भी कर्म करता है वह उसके अर्थात् जीवात्मा के कर्म हैं।

कर्म अर्थात् Action

देहधारियों की देह में कुछ कर्म स्वतः ही गतिशील होते हैं जैसे तन्त्रिका तन्त्र की गतिविधि, हृदय की कार्य प्रक्रिया आदि। कुछ कर्म, जीव इन्द्रियों के वशीभूत हो कर करता है। सम्पूर्ण सृष्टि जब निर्माण प्रक्रिया करती है तब उसे श्रीभगवान् ने कर्म की संज्ञा दी है। सृष्टि बेहद विचित्र एवं विस्तृत भी है। यहाँ निरन्तर गतिशीलता, परिवर्तनशीलता बनी रहती है। बीज से वृक्ष तथा वृक्ष से पुनः बीज की उत्पत्ति की यह प्रक्रिया सतत है। जीव जन्म लेते हैं तथा कुछ समय पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होते हैं, तब नवीन जीवन का इस धरा पर प्रादुर्भाव होता है।

8.4

अधिभूतं(ङ्) क्षरो भावः(फ्), पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र, देहे देहभृतां(म्) वर ॥ 8.4॥

हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! क्षर भाव अर्थात् नाशवान् पदार्थ अधिभूत हैं, पुरुष अर्थात हिरण्यगर्भ ब्रह्मा अधिदैव हैं और इस देह में (अंतर्यामी रूप से) मैं ही अधियज्ञ हूँ।

विवेचन- हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! निरन्तर परिवर्तनशील यह भौतिक प्रकृति, अधिभूत (भौतिक अभिव्यक्ति) कहलाती है अर्थात् जो जीव जन्म लेते हैं उनकी मृत्यु भी अवश्यसम्भावी है। पृथ्वी में विद्यमान चौरासी लाख योनियों में जीव निरन्तर उत्पन्न एवं नष्ट होते रहते हैं। कीट, पशु, पक्षी की उत्पत्ति प्रक्रिया में निश्चित ही अन्तर होता है।

हमारी कोशिकाएँ भी बारह वर्षों में परिवर्तित हो जाती हैं, यह अधिभूत है। जिस प्रकार सिनेमा में चलचित्र पर्दे पर प्रदर्शित होता है जो निरन्तर परिवर्तनशील होता है। उसी प्रकार प्रकृति में जीव जगत् का निरन्तर निर्माण तथा क्षरण होता है अर्थात् वे निरन्तर परिवर्तनशील हैं, अधिभूत कहलाते हैं।

श्रीभगवान् का विराट रूप, जिसमें सूर्य तथा चन्द्र सदृश्य समस्त देव सम्मिलित हैं, अधिदैव कहलाता है। प्रत्येक देहधारी के हृदय में परमात्मा स्वरूप स्थित मैं अर्थात् श्रीभगवान् परमेश्वर अधियज्ञ (यज्ञ का स्वामी) कहलाते हैं। परमात्मा जीव देह में सदैव साक्षी के रूप में विद्यमान हैं। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है।

- **अधिभूत—आदिभौतिक**
- **अधिदैव— आदिदैविक**
- **अधियज्ञ— आध्यात्मिक**

अनुचित दिनचर्या के कारण जो भी दोष उत्पन्न होते हैं वे आदिभौतिक के अन्तर्गत आते हैं।

पिछले जन्मों के कर्मों के कारण जो भी दोष नवीन जन्म में उत्पन्न होते हैं वे आदिदैविक कहे जाते हैं, अत: इन्हें समझना एवं इनका निवारण करना अत्यन्त आवश्यक है। गुरुदेव जी कहते हैं कि आधिदैविक दोषों के निवारणार्थ कर्मकाण्ड किए जाने चाहिए। हम महाकुम्भ स्नान करने जा रहे है तब हमारे आदिदैविक दोषों का नाश होता है। आधिदैविक दोषों को नष्ट कर आधिभौतिक दोष जैसे सर्दी, खाँसी, ज्वार आदि समस्याओं का भी समाधान प्राप्त किया जा सकता है।

कर्मकाण्ड आदिदैविक तथा आदिभौतिक के मध्य पुल का कार्य करते हैं। वैसे ही आदिभौतिक से सीधे परमात्मा तक भी नहीं पहुँचा जा सकता। हम जानते हैं कि आदिदैविक देवतागण हैं, जिनकी उपासना से दुःख समाप्त होते हैं। अनेक देव हमारे शारीरिक अङ्गों पर भी नियन्त्रण रखते हैं, जैसे नेत्रों के देवता सूर्य हैं, वाणी के देव अग्नि हैं आदि। ये समस्त देवगण सृष्टि के सञ्चालन हेतु (divine source)अधिष्ठात्री शक्ति रूप हैं, परन्तु ये देव परमात्मा से कैसे भिन्न हैं? हम देव एवं परमात्मा से कैसे भिन्न हैं? यह समझना आवश्यक है। श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं अधियज्ञ रूप में हूँ तथा सृष्टि सञ्चालन की समस्त शक्ति देवों को श्रीभगवान से ही प्राप्त होती है।

अब आगे आने वाले श्लोक में श्रीभगवान् अर्जुन द्वारा पूछे गए अन्तिम प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं।

8.5

अन्तकाले च मामेव, स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः(फ्) प्रयाति स मद्भावं(म्), याति नास्त्यत्र संशयः॥ 8.5॥

जो मनुष्य अन्तकाल में भी मेरा स्मरण करते हुए शरीर छोड़ कर जाता है, वह मेरे स्वरूप को ही प्राप्त होता हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

विवेचन- जीवन के अन्त में जो केवल मेरा स्मरण करते हुए स्वयं की देह को त्यागता है, वह शीघ्र ही मेरे (श्रीभगवान्) स्वभाव को प्राप्त करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

यहाँ श्रीभगवान् जीवन के अन्तिम क्षण को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बताते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता जी जीने की कला (art of living) भी सिखाती हैं तथा देह छोड़ने (art of leaving from the world) की भी शिक्षा देती हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि अपने अन्त समय में जीव जिस भी वस्तु का स्मरण करता है, उसका अगला जन्म उसी प्रकार का होता है। यही जीव देह त्याग करते हुए

मामेव अर्थात् मेरा स्मरण करता है तब वह मेरे अर्थात् परमात्मा के भाव को जो कि सत् चित् आनन्द है, को बिना संशय निश्चित रूप से प्राप्त करता है।

यहाँ श्रीभगवान् किसी भी प्रकार की साम्प्रदायिकता को समाप्त करने के उद्देश्य से कहते हैं कि जीव द्वारा अपने अन्तिम समय में, मेरा स्मरण जिस किसी भी रूप में, चाहें वह श्रीराम, श्रीकृष्ण या दुर्गा माँ के रूप में किया जाए, वह मृत्यु पश्चात् मेरा ही स्वभाव प्राप्त करेगा।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि मनुष्य सदैव स्वयं के जीवन के उन्नयन हेतु विचार करता है। अधिक धन-सम्पत्ति का एकत्रीकरण, अधिक से अधिक मान-प्रतिष्ठा आदि के सतत चिन्तन से युक्त मानव कदापि मृत्यु रूपी अटल सत्य का चिन्तन नहीं करता तथा उसका ऐसा न करना एवं अपने जीवन को सर्व सुलभ बनाने का उसका प्रयत्न अर्द्ध सत्य है। सत्य का परिपूर्ण होना तभी सम्भव है जब मनुष्य मृत्यु रूपी सघन विषय का भी चिन्तन करे।

रङ्गनाथ जी सम्प्रदाय में कहते हैं कि हमारे समाज में मृत्यु का शब्द भी हम मुख से नहीं निकाल सकते। उसे अशुभ माना जाता है, परन्तु यह विचार कोई नहीं करता कि मृत्यु के पश्चात् ही तो जीवन में नित्यता तथा नूतनता बनी रहती है।

8.6

यं(म्) यं(म्) वापि स्मरन्भावं(न्), त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं(न्) तमेवैति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः ॥ 8.6॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! (मनुष्य) अन्तकाल में जिस-जिस भी भाव का स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह उस (अंतकाल के) भाव से सदा भावित होता हुआ उस- उस को ही प्राप्त होता है अर्थात् उस - उस योनि में ही चला जाता है।

विवेचन- हे कुन्तीपुत्र! शरीर त्यागते समय मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता है, वह उस भाव को निश्चित रूप से प्राप्त होता है। यदि जीव श्रीभगवान् का स्मरण अपने अन्तिम क्षणों में करता है तब वह ईश्वर के सत् चित् आनन्द के भाव अर्थात् असीम, कदापि नष्ट न होने वाले अखण्ड ज्ञान तथा अनन्त सुख की प्राप्ति करता है। यह सुख व्यवहारिक सुख से परे अविनाशी है, परन्तु जीव देह त्याग करते समय परमात्मा का स्मरण न करने हुए अपने भौतिक सुख जैसे मान, धन सम्पदा या इन्द्रिय जनित सुखों-दुःखों के विषय में चिन्तन करता है तब मृत्यु पश्चात वह जीव उस स्वभाव को ही प्राप्त होता है।

यह हमारे मन की विशेषता है, वह जिस भी किसी के विषय में स्मरण-चिन्तन करता है। हमारा मन उसका स्वरूप, भाव एवं उसका लक्षण प्राप्त कर लेता है।

इसे समझने हेतु एक कथा बेहद प्रचलित है—

भृङ्गी नामक एक कीट जिसे दत्तात्रेय महाराज ने अपना गुरु माना था। वह मिट्टी का एक घर निर्माण कर, एक अन्य सामान्य कीट को लाकर तथा उसे अपने डङ्क से काट कर, उस मिट्टी के घर में ले जाकर द्वार पर लगा देता है। वह घर के ऊपर उड़ते हुए उसकी निगरानी करता है। अन्दर घर में उपस्थित कीट भयवश निरन्तर अपने शिकारी का चिन्तन करता रहता है। इस प्रकार निरन्तर भृङ्गी कीट का स्मरण करते हुए एक समय ऐसा आता है कि वह सामान्य कीट भी भृङ्गी कीट में रूपान्तरित हो जाता है।

यह एक असामान्य घटना प्रतीत होती है परन्तु सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। गीता माता जीवों के मन में मृत्यु सम्बन्धित इस प्रकार के विचारों को स्थापित कर उन्हें नकारात्मकता से सकारात्मकता तक ले जाती हैं।

ऐसी ही एक कथा जिसके अनुसार राजा जड़भरत जी ने पुनर्जन्म में हिरण का जन्म प्राप्त किया। ध्यान योग के लिए वन गए राजा जड़भरत जी को एक हिरण का शावक घायल अवस्था में प्राप्त होता है। वे उसकी बेहद सेवा कर, उसे पूर्णतया स्वस्थ कर

देते हैं। उनका स्नेह उस शावक के प्रति निरन्तर बढ़ता जाता है। एक दिन वह हिरण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। तब से अपनी मृत्यु तक राजा जड़भरत उसका स्मरण करते रहते हैं तथा मृत्यु के समय भी वे उस हिरण का ही स्मरण करते हैं। जिस कारण वे अपना अगला जन्म हिरण रूप में प्राप्त करते हैं, परन्तु चूँकि किसी भी मनुष्य के किए गए पाप, पुण्य सदैव फलीभूत होते हैं इसलिए हिरण रूप राजा जड़भरत की मृत्यु पश्चात् उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है।
यह सिद्धान्त हमारे शास्त्रों में भी प्रतिपादित है।

अत: ईश्वर की कैसी प्रार्थना की जाए कि अन्त समय में हम उनके स्वरूप को प्राप्त कर सकें?

8.7

तस्मात्सर्वेषु कालेषु, मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः(र्), मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ 8.7॥

इसलिए (तू) सब समय में मेरा स्मरण कर (और) युद्ध भी कर। मुझमें मन और बुद्धि अर्पित करने वाला (तू) निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा।

विवेचन- हमारी सनातन परम्परा में हम पुनर्जन्म को मानते हैं। हमारे ऋषि-मुनि श्रेष्ठ ज्ञानी थे। हम सभी आज भी उनके वचनों में श्रद्धा रखते हैं जिसका एक उदाहरण आपको महाकुम्भ के रूप में वर्तमान समय में दृष्टिगोचर हो रहा है। अधिकांशतः उपासना पद्धतियाँ जीव को एक देह मानती हैं। इस धारणा के चलते वे अपने मृतकों हेतु RIP(rest in peace) जैसे शोक संदेशों का प्रयोग करते हैं अर्थात् जीव मृत्यु पश्चात् वर्षोंपर्यन्त शान्ति प्राप्त कर निद्रासीन रहे, परन्तु हमारे ऋषिगण जीव को देह न मानते हुए आत्म तत्त्व, चैतन्य मानते हैं, इसलिये सनातनी, ईश्वर आत्मा को सद्गति प्राप्त करें, ऐसा कहते हैं। आत्म तत्त्व एक जन्म में एक प्रकार की उसके कर्मों पर आधारित देह ग्रहण करता है तथा जब उस जीवात्मा का समय उस देह में पूर्ण हो जाता है तब वह जीवात्मा स्वतः ही उस देह का त्याग कर अपनी नवीन जीवन यात्रा की ओर अग्रसर होती है। जीव देह में उपस्थित यही चेतना ही देह को ओजस्विता प्रदान करती है। उसकी ऊर्जा के परिणामस्वरूप ही देह अपने विभिन्न भौतिक कार्यों का सम्पादन कर पाने में सक्षम होती है।

the law of conservation of energy says that energy is neither created nor destroyed, इसे हम भली प्रकार जानते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि चैतन्य वास्तव ने जीव का मूल स्वरूप है, जिसका उन्नयन होना चाहिए। उसकी अधोगति नहीं होनी चाहिए। इसी कारण श्रीभगवान् कहते हैं कि मनुष्य को अपनी देह त्याग करते हुए निरन्तर परमात्मा का स्मरण-ध्यान करना चाहिए।

अर्जुन यह प्रश्न श्रीभगवान् से पूछते हैं कि आप जो ज्ञान दे रहे हैं वह रण क्षेत्र में किस प्रकार सम्भव है? यहाँ तो मुझे बाण चलाने हैं, शत्रुओं के आघातों का प्रत्युत्तर देना है। युद्ध विजय हेतु रणनीति निश्चित करनी है तब ऐसी स्थिति में भगवद् चिन्तन कैसे सम्भव है?

अर्जुन सदृश्य हम सभी अनुभव करते हैं कि समस्त आध्यात्मिक कार्य एवं परमात्मा का चिन्तन ठाकुर बाड़ी में ही किया जाना चाहिए क्योंकि हम परमात्मा के मनन को सृष्टि में चलायमान कार्यकलापों से भिन्न मानते हैं, परन्तु श्रीभगवान् अर्जुन को यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि ये दोनों कार्य भिन्न नहीं हैं तथापि आपस में घनिष्ठता से एकीकृत हो तथा लयबद्ध हो गतिशील होते हैं।

अतएव, हे अर्जुन! तुम्हें सदैव कृष्ण रूप में मेरा चिन्तन करना चाहिए। अपने कर्मों को मुझे समर्पित करके तथा अपने मन एवं बुद्धि को मुझमें स्थिर करके तुम निश्चित रूप से मुझे प्राप्त कर सकोगे

श्रीभगवान् अर्जुन के मन में उत्पन्न सन्देह का निवारण करते हुए कहते हैं कि अर्जुन, कौन जानता है कि कब किसका अन्तिम

समय आयेगा?
परन्तु अपने जीवन में अपना कर्त्तव्य कर्म करते हुए अपने मन और बुद्धि को मुझमें अर्पित करो। जैसे राष्ट्र के रक्षार्थ तत्पर सैनिक, चिकित्सक, गृहिणी आदि किसी भी पद पर आसीन व्यक्ति, चाहें वह बधिक(ज़ल्लाद)ही क्यों न हो। न्यायाधीश किसी को मृत्यु दण्ड देता है तथा बधिक उसे क्रियान्वित करता है, परन्तु उन्हें जीव हत्या का पाप नहीं लगता क्योंकि वे अपना कर्त्तव्य कर रहे हैं एवं साथ ही यदि वे अपनी बुद्धि तथा मन को परमात्मा पर अर्पित कर देते हैं तब ऐसी स्थिति में वे भी निश्चित ही भगवद् तत्त्व की प्राप्ति के पात्र बन जाते हैं।

सन्त तुकाराम जी महाराज कहते हैं कि समस्त जीवों के जीवन में उनके बाह्य परिवेश में तथा अन्त:करण में कोई न कोई युद्ध चल रहा है। वे सभी किसी न किसी युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हैं, ऐसे में प्रत्येक जीव को ईश्वर का अनुस्मरण करते रहना चाहिए क्योंकि ईश्वर तो सदैव जीव का स्मरण करते ही हैं।

सन्त तुकाराम महाराज जी कहते हैं कि-

रात्री दिवस आम्हां युद्धाचा प्रसंग| अंतर्बाह्य जन आणि मन ||१||
जीवाही आगोज पडती आघात| येउनिया नित्य नित्य करी ||२||
तुका म्हणे तुझ्या नामाचिया बळे| अवघियांचे काळें केले तोंड||३

यह तो व्यापार है जो जीव के बाह्य क्षेत्र एवं अन्तर्मन में चल रहा है, अत: जीव को निरन्तर व्यापक परमात्मा का आश्रय लेते हुए अपना मन तथा बुद्धि उस परमात्मा के चिन्तन में अर्पित करना चाहिए। मन भावना प्रधान है जबकि बुद्धि तार्किक है। माता को बालक प्रेम करता है, यह सर्वथा भाव प्रधान है। उस हेतु तर्क नहीं दिए जाते। गुरुदेव जी कहते हैं कि श्रद्धा से ही अनेकों बार ज्ञान की प्राप्ति होती है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-
तें आंत बाहेरी आघवें । मीचि करूनि घालावें ।
मग सर्वीं काळीं स्वभावें । मीचि आहें ॥

ज्ञानेश्वर महाराज जी ने इसे समत्त्व योग कहा क्योंकि जिस परमात्मा को जीव प्रेम करता है, बुद्धि भी उसे ही श्रेष्ठ जानती है। जब मन, बुद्धि का एकीकरण होगा तब समत्त्व की व्याख्या परिपूर्ण होगी, तत्क्षण भक्त उस परम तत्त्व को प्राप्त होगा जो सर्वश्रेष्ठ है।

इस हेतु ईश्वर को अपना मित्र बना ही श्रेयस्कर होगा। उन्हें केवल पूजा स्थल तक ही सीमित न रखते हुए उन्हें प्रतिक्षण अपने निकट अनुभव करो। जब हम किसी को अपने समीप रखते हैं तभी हम उसे उचित प्रकार से समझ पाते हैं अत: ईश्वर, उस परमसत्ता को प्राप्त करने हेतु उन्हें अपने हृदय के सदैव समीप रखना अति आवश्यक है।

8.8

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा नान्यगामिना ।
परमं (म्) पुरुषं (न्) दिव्यं (म्), याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ 8.8॥

हे पृथानन्दन! अभ्यासयोग से युक्त (और) अन्य का चिन्तन न करने वाले चित्त से परम दिव्य पुरुष का चिंतन करता हुआ (शरीर छोड़ने वाला मनुष्य) (उसी को) प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि यदि किसी जीव का मन निरन्तर प्रयासों के पश्चात् भी विचलित हो जाए तब जीव को अपने दैनिक कार्यों की पूर्ति सहित सतत अभ्यास में रत रहते हुए पुनः-पुनः मन को एकाग्र करते हुए मेरा अनुस्मरण करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

जब हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के अध्ययन को प्रारम्भ करते हैं तब उनके पठन में, कण्ठस्थीकरण में कठिनाईयाँ आती हैं, जो स्वभाविक भी है, परन्तु जैसे-जैसे हम उनका अभ्यास करते जाते हैं उनका पठन सरल होता जाता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे पार्थ! जो व्यक्ति मेरा स्मरण करने में अपना मन निरन्तर लगाये रखकर अविचलित भाव से भगवान् के रूप में मेरा ध्यान करता है, वह मुझको अवश्य ही प्राप्त होता है। हमारे ऋषि-मुनि निरन्तर अभ्यास द्वारा स्वयं के चित्त को ईश्वर के श्रीचरणों में समर्पित करने हेतु सदैव तत्पर थे।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-

रुणुझुणु रुणुझुणु रे भ्रमरा । सांडीं तूं अवगुणु रे भ्रमरा ॥
चरणकमळदळू रे भ्रमरा । भोगीं तूं निश्चळु रे भ्रमरा ॥

ज्ञानेश्वर महाराज जी का मानना था कि मन एक भौंरे के सदृश्य है जिन्हें भगवद् भक्ति हेतु श्रीभगवान् के कमल रूपी चरणों के पराग का ही निरन्तर आस्वादन करना चाहिए।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं कि-

तूं मन बुद्धी सांचेसीं। जरी माझीया स्वरूपीं अर्पिसी।
तरी मातेंचि गा पावसी। हे माझी भाक ।।
हेंच कायिसया वरी होये । ऐसा जरी संदेहो वर्ततु आहे ।
तरी अभ्यासूनि आदीं पाहें । मग नव्हे तरी कोपें ॥

श्रीभगवान् अर्जुन को शपथ देते हैं कि यदि तुम अपना मन एवं बुद्धि मुझे पूर्ण रूप से अर्पित कर देते हो तब तुम मेरे ही स्वरूप को प्राप्त करोगे।
मेरे स्वरूप को प्राप्त करने का एक साधन है कि निरन्तर अभ्यास द्वारा अपने चित्त को, बुद्धि को मुझे अर्पित करो, तथा यदि ऐसा सम्भव न हो सके तब उस हेतु बारम्बार प्रयास करो। तब तुम निःसन्देह ही उस परमतत्त्व को प्राप्त करोगे।

विचार-मन्थन (प्रश्नोत्तर)-

प्रश्नकर्ता- पद्मिनी अग्रवाल जी
प्रश्न- अधिदैव,अधिभूत एवं अधियज्ञ के बारे में समझा दीजिए।
उत्तर - उत्पत्ति व विनाश धर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत हैं।
हिरण्यमय पुरुष अधिदैव हैं। श्रीभगवान् ही सब यज्ञों के भोक्ता और प्रभु हैं और समस्त फलों का विधान वे ही करते हैं, इसलिये अधियज्ञ श्रीभगवान् स्वयं ही हैं।

प्रश्नकर्ता- ऊषा सिंह जी
प्रश्न - किसी अत्यधिक रोगग्रस्त व्यक्ति को कौन सा अध्याय सुनाना चाहिये?
उत्तर - उन्हें कोई भी अध्याय सुना सकते हैं। पूरी श्रीमद्भगवद्गीताजी भी सुना सकते हैं, पर अधिकतर लोग पन्द्रहवें अध्याय (पुरुषोत्तमयोग) को सुनाते हैं।

।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||